स्वपथगामी

स्व-चिकित्सा उत्सव

स्वपथगामी नेटवर्क के तहत् 12 – 17 दिसम्बर, 2007 को गाँधी स्मारक भवन, छतरपुर (मध्यप्रदेश) में स्व-चिकित्सा उत्सव आयोजित किया गया। उत्सव के कुछ अनुभव प्रस्तुत कर रहे हैं।

मैंने अपने आपको इस दुनिया से दूर रखना शुरू कर दिया था। मैं आज की इस प्रतिस्पर्द्धात्मक, उपभोगी व विचारहीन दुनिया से तंग आ चुकी थी। केवल मेरे तीनों बच्चों को ही मैंने अपने सुख–दुःख के साथी बनने दिया। मैंने कई सालों तक मोलेक्यूलर जेनेटिक्स के क्षेत्र में शोध किया। अपने प्रकृति के प्रेम को और गहरा करने के लिए मैंने जीव–विज्ञान पढ़ना शुरू किया, पर दुःख की बात है कि इस शोध की प्रक्रियाओं व तरीकों में बहुत ही हिंसात्मक रसायनों व तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता था। इसीलिए मैंने इस लालच व स्पर्द्धा की दुनिया को छोड़ने का निर्णय लिया, ताकि मैं अपने जीवन व ज्ञान को एक दूसरे तल पर ले जा सकूँ, जहाँ कम हिंसा हो। यह सब अमेरिका में हुआ।

10 साल पहले मैं भारत लौटी, यह सोचकर कि यहाँ अलग तरह की दुनिया मिलेगी। पर यहाँ तो वो का वो रवैया अधिक घिनौने स्तर पर और ज्यादा विस्तृत रूप में पाया। मेरे बच्चे यहीं पर पैदा हुए थे, पर वे भी यहाँ पर ईर्ष्या व लालच के जाल में फँस गए। मैं भी कुछ हद तक इसी धारा में बहने लगी थी। पिछले कुछ महीनों से मैं बहुत श्रद्धा से यह प्रार्थना कर रही थी कि मुझे वो रोशनी व रास्ते दिखे, जो मुझे अपने विश्वास पर अटल रहकर जीने की प्रेरणा दे।

छतरपुर में आयोजित स्व–चिकित्सा उत्सव का निमन्त्रण मेरी मन्नत को पूरा होने का एक पैगाम बनकर आया। मेरे लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण अनुभव रहा, जिसमें मैं इतने लोगों से मिल पाई, जो आज की दर्दनाक दुनिया से हटकर अपने रास्ते बना रहे हैं। यह एक ऐसा सन्तुष्टिपूर्ण एवं खुशी प्रदान करने वाला प्लेटफॉर्म था, जहाँ हरेक व्यक्ति को अपनी बात सबके साथ बाँटने का मौका था। यह सच में एक जीवन का उत्सव था, जहाँ खाना बनाना, खाना, सफाई करना, गाना, नाचना, बातचीत करना, बच्चों की देखभाल करना आदि सभी इसी प्लेटफॉर्म के हिस्से थे; जैसा कि होना भी चाहिए। हमारी रोजमर्रा की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के साथ–साथ ही हम बहुत सारी महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ भी कर रहे थे। आज के शहरी जीवन में इन मूलभूत जरूरतों की पूर्ति को ''काम'' से अलग माना जाता है। उदाहरण के लिए छतरपुर में जब हम चूल्हे के पास बैठकर रोटियाँ सेंक रहे थे, तब हम जेनेटिक–इंजीनियरिंग जैसी चीजों पर बात भी कर रहे थे।

मेरे लिए सबसे सुकून, सन्तुष्टि और सम्बल देने वाली बात यह थी कि वहाँ पर मेरे जीव–विज्ञान को छोड़ने के निर्णय को सराहा गया, जो पहले कभी नहीं हुआ। मेरे उस निर्णय के लिए हमेशा मुझे दोषी ठहराने की कोशिश की जाती थी और मुझमें ही कोई कमी बताकर शर्मिन्दा किया जाता था। छतरपुर जाने से मुझमें एक नई ऊर्जा और ताकत मिली है और मुझे अपने पथ पर अडिग रहने व अपने बच्चों को भी उसी तरह से बड़ा करने की हिम्मत मिली है।

– सुजाता गुहा <katsinas@gmail.com> 22 बी, मांडेविले
गार्डन, फ़्लेट 3 बी, कोलकाता – 700038

मेरे बड़े भैया के पूरे शरीर पर खुजली चलती थी। मेरे पापा ने डॉक्टर से इलाज करवाया, पर कोई आराम नहीं मिला। तभी मेरी मम्मी की जान–पहचान के बुजुर्ग दादा ने बताया कि कपूर और नारियल के तेल दोनों को मिलाकर पूरे शरीर पर लगाना है। उससे मेरे भाई को बहुत आराम मिला। तबसे मुझे भी जड़ी–बूटियों पर विश्वास होने लगा। मैं शिक्षान्तर में राम भैया के साथ जड़ी–बूटियों के बारे में सीखने लगी। मैं छतरपुर गई, वहाँ कई जड़ी–बूटी वाले लोगों से मिली। मैंने वहाँ हर्बल साबुन बनाने की कार्यशाला की। साबुन बनाते समय मेरी अंजु, मीना, शाहरुख आदि से दोस्ती हुई और अपने स्वास्थ्य के बारे में बातचीत हुई। मैं ऐसे कई गुणी लोगों से मिली, जिनके पास कुछ न कुछ हुनर था। मैंने खासकर प्रतापी बाई और मातादीनजी से बहुत सीखा, जो खुद पढ़े–लिखे नहीं हैं। मुझे यह लगने लगा कि किसी भी काम को सीखने के लिए पढ़ाई जरूरी नहीं है। कुछ भी काम करने के लिए जिज्ञासा जरूरी है, ठीक उसी प्रकार जैसे भोजन की लिए भूख जरूरी है।

बसन्तपुर (छतरपुर) में रहने वाले मातादीनजी की इस बात से मुझे प्रेरणा मिली कि किसी भी काम को करना है, तो उसे प्रेम से करो, ताकि उस काम का असर भी प्रेम बढ़ाए। वे जड़ी–बूटियों से अलग–अलग प्रयोग करते हैं। मैंने उनके साथ मसाज तेल बनाना सीखा। मेवाड़ (राजस्थान) से आई प्रतापी बाई की यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी कि वो बिना पैसे के भी लोगों का इलाज करती है और लोगों को जड़ी–बूटियों के बारे में बताती है। यह एक बड़ी बात है, क्योंकि आजकल किसी भी कोर्स के लिए बहुत पैसा देना पड़ता है, जबकि ऐसे गुणी लोग बिना पैसे के भी अपना हुनर सिखाने को तैयार हैं। मैं सोच रही हूँ कि ऐसे कुछ गुणियों के पास जाकर मैं जड़ी–बूटियों के बारे में और सीखूँ।

– उमा सरगरा d/o पन्नालालजी
सरगरा, 3 सी, नीमचमाता स्कीम,
देवाली, उदयपुर (राजस्थान)

कहने को बहुत कुछ मगर....कैसे कहें हम? कैसे कहें हम!

एक समय था, जब मैं रसोई, खाना बनाना, सेहत और शरीर के विषय में कुछ कम ही करती और सोचती थी। लेकिन कुछ समय से ये सब बदल रहा है। इसके कई कारण है, उनमें से एक है – स्व–चिकित्सा उत्सव। यह उत्सव एक बढ़िया मौका रहा सेहत और उपचार से जुड़े अलग–अलग विचारों पर बातचीत करने का व अपने से क्या जुड़ता है ये समझने का।

छतरपुर के गॉधी आश्रम में पहुँची और देखा कि सभी एक साथ खुले आसमान के नीचे ऑगन में गप्पे मार रहे हैं! कुछ ही मिनटों में, बच्चों के दौड़ने–खेलने की आवाज़ें आईं। कुछ लोग शाम के खाने की बात करते सुनाई दिए और थोड़ी दूरी पर दो–चार लोग आपस में बातें करते हुए नज़र आए। हर कोने में कुछ न कुछ चल रहा था। ये था माहोल सेल्फ–हीलिंग कार्यशाला का।

उत्सव में मैं जड़ी–बूटियों से इलाज करने वाले कुछ हीलर्स की बातों से बहुत प्रेरित हुई। जब अलग–अलग उपचार के बारे में बात हो रही थी, तो बरातु ने अपनी पोटली से जड़ी–बूटी निकालते हुए हल्के से कहा, ''मैं तो सिर्फ उस जड़ी–बूटी और रोग की बात करता हूँ, जिसको लेकर मैंने काम किया है और उसका असर अनुभव किया है।'' और नारायणी बोली, ''मैंने आज तक किसी से पैसे नहीं लिये, मेरे पास जो जानकारी और हुनर है, उसे बॉटा है। लोग ठीक हुए हैं और यही मेरा इनाम है।'' मैं उन्हें सिर्फ सुनती ही रह गई। कितनी सरलता और सादगी से इन्होंने ये बातें कह दी और ये सिर्फ कह नहीं रहे, कर भी रहे हैं। जड़ी–बूटी की जानकारी, जंगल, पेड़–पौधों से दोस्ती, उनका साथ इंसान को कितना नम्र बनाता है।

मेरे मन में ख्याल आया कि आखिर ऐसी क्या बात है कि स्कूल और कॉलेज जाकर एलोपैथिक उपचार की पढ़ाई और प्रेक्टिस करने वाले सारे 'डॉक्टर्स' में; जो उन्हें ऐसे लगने लगता है कि सारा ज्ञान का भण्डार उनके पास ही है। और फिर महँगी दवायें, बड़ी–बड़ी कम्पनियॉ, और दवाइयों के साइड इफेक्ट्स।

इसी के साथ कुछ सवाल उठे, जिन्हें लेकर मैं घर लौटी, उन पर और काम होना अभी बाकी है। ऐसे कुछ सवाल आपके साथ बॉटना चाहूँगी – हम अपने शरीर, उसकी क्रिया के बारे में कितना जानते हैं? हम इसे जानना कितना जरूरी समझते हैं? ऐसी कितनी सारी बातें हैं, जो जानना हम जरूरी नहीं समझते? या फिर जो रोज की जिन्दगी से बहुत करीब है, लेकिन हम उसके बारे में सोचते नहीं हैं, बस किये जाते हैं यह मानकर कि ऐसा ही होता आया है और ऐसा ही होता रहेगा? क्या यह सही है? मेरी जिन्दगी के लिए यह सही नहीं है। घर लौटकर कुछ–एक बातें अपनी जिन्दगी, अपने परिवार और आसपास में बदलने की कोशिश कर रही हूँ। इसे बेहतर करने में अपने परिवार व दोस्तों का साथ चाहती हूँ। सच में अपने अनुभव व सोच को आचरण में लाने का अपना एक आनन्द है।

गॉधी स्मारक भवन : कुछ प्रयोग

विभिन्न प्रकार के फलदार पेड़ों से घिरा यह आश्रम स्वपथगामियों के लिए एक अवसर है, जहॉ पर खेती, स्व–चिकित्सा, संगीत आदि के कुछ प्रयोग हो रहे हैं तथा अन्य कई नए प्रयोग किए जा सकते हैं।

आश्रम में 72 एकड़ जमीन है, जिसमें जैविक खेती की जाती है। एक प्राकृतिक चिकित्सालय है, जहॉ मिट्टी, पानी आदि से विभिन्न रोगों का इलाज किया जाता है। हर सुबह छतरपुर शहर से करीब 15 लोग नियमित रूप से योगासन के लिए आते हैं। आश्रम परिसर में एक हर्बल स्टॉल शुरू किया गया है, जिसमें विभिन्न प्रकार की हर्बल चाय, गेहूँ–जौ के ज्ुंआरे का रस, करेले आदि का ज्यूस उपलब्ध होता है। इनके अलावा जड़ी–बूटियों से विभिन्न औषधियॉ भी तैयार की जाती है।

यहॉ एक पुस्तकालय है, जहॉ गॉधी–विनोबा–टेगौर सहित कई चिन्तकों एवं साहित्यकारों का अनूठा साहित्य है। परिसर में ही तबला और हारमोनियम सीखने का निःशुल्क अभ्यास किया जाता है। हर एकाध सप्ताह में संगीत कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं।

जो साथी यहॉ रहकर कुछ प्रयोग करना चाहते हैं एवं सीखना चाहते हैं, वे सम्पर्क कर सकते हैं :– संजय–दमयन्ती <sanjoydamyanti@rediffmail.com> C/O गॉधी स्मारक भवन, डाकखाना चौराहे के पास, छतरपुर (मध्यप्रदेश) फोन : 07682–248274 / 9926658469

मैं मीडिया मेटर्स संस्था के साथ हूँ, जो माध्यम और सामाजिक सवालों पर सहभागी पद्धत से काम करती है। गाने, नाटक, खेल, फिल्में मुझमें हमेशा नई उमंग पैदा करते हैं। एक सरल शान्त जीवन की तलाश और खुद को पहचानने की कोशिश मुझे शहर से दूर गॉव, ज़मीन, जंगल और प्राकृतिक खेती की ओर ले जा रही है।

– अंजु उप्पल <uppal.anju@gmail.com>, मीडिया मेटर्स,
प्लॉट नं. 400, साई सेक्शन, अम्बरनाथ – 421501
(महाराष्ट्र)

नाईगिरी बनाम **नौकरी**?

स्कूल छोड़ने के बाद लगभग एक महीने तक मैं यूँ ही घूमता रहा। उस समय मैं अपने एक दोस्त से मिला, जो उन दिनों कशीदाकारी का काम करता था। मैंने उससे पूछा कि क्या वह मुझे यह काम सिखा सकता है? मैंने एक महीने तक उसके साथ रहकर यह काम सीखा, लेकिन मेरी इस काम में कोई खास रुचि नहीं बनी। इसके बजाय मैंने अपने पारम्परिक काम (बाल काटना) को बेहतर समझा।

बाल काटने का काम सीखने के लिए मैं एक दुकान पर गया। उन्होंने कहा कि तुम यहॉ काम भी सीख सकते हो और चाहो तो पढ़ाई भी साथ–साथ कर सकते हो। लेकिन मुझे लगा कि अगर मैं यह काम सीखना चाहता हूँ, तो मुझे पूरा समय उसमें देना चाहिए और ऐसी पढ़ाई जिससे कुछ मिलने वाला नहीं है; को जारी रखने का कोई फायदा नहीं है। मैंने एक साल में यह काम अच्छी तरह सीख लिया।

उसी दौरान मेरी मुलाकात मेरे एक चचेरे भैया से हुई। उन्होंने मुझसे पूछा कि आजकल क्या कर रहे हो, तो मैंने अपने काम के बारे में बताया। वे बोले, ''तुम **जिन्दगी भर केवल बाल ही काटते रहोगे** और कुछ नहीं कर पाओगे!'' तब मुझे थोड़ा बुरा लगा, पर मैंने भी उनसे पूछा कि आप क्या कर रहे हैं, तो बोले – मैं तो आर. ए. एस. की परीक्षा दे रहा हूँ। मैंने उनसे कहा कि ठीक है, आप अपनी परीक्षा दीजिए और मैं अपना काम करता हूँ, एक साल बाद मिलते हैं और देखते हैं कि किसके पास क्या होता है? एक साल बाद हम मिले। वे परीक्षा में फेल हो गए थे, निराश और लाचार लग रहे थे। पर मेरे पास मेरा हुनर था, खुशी थी और मन को सन्तुष्टि थी। मैंने उनसे कहा था कि आप चाहे जितने साल और पढ़ाई में खर्च कर दीजिए, आपको सिर्फ गुलामी/नौकरी के लिए ही भटकना पड़ेगा, आप अपना कुछ नहीं कर पाओगे।

मैंने 1996 से यह काम शुरू कर दिया था। आज मेरे पास मेरे खुद का हुनर है। मैं कहीं भी जाऊँ, इस हुनर की जरूरत तो सब लोगों को पड़ती ही है। इसलिए मैं अपने काम से खुश हूँ। इसके लिए मुझे किसी की गुलामी करने की जरूरत नहीं पड़ती है। इस काम में मुझे बाल काटने के हुनर के अलावा और भी बहुत फायदे हुए हैं। यहॉ दुकान में अलग–अलग तरह के लोग आते हैं, उनसे अलग–अलग बातें होती हैं, सबसे अलग–अलग व्यवहार होता है, पहचान होती है, दोस्ती होती है। अपने काम में दिन–ब–दिन सुधार होता है।

शुरूआत में यह काम करने में थोड़ी शर्म महसूस हुई। इस काम में नया–नया था, इसलिए यही दिमाग में रहता था कि स्कूल वाले दोस्त लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे? शर्म करना स्कूल में सिखाया गया था। जो जितना ज्यादा पढ़ा–लिखा होता है, उसको उतनी ही शर्म आती है। आज किसी ग्रेजूएट व्यक्ति से पोछा लगाने के लिए कहेंगे, तो उसे शर्म आएगी और वो यह काम नहीं करेगा। मुझे आज किसी भी तरह का काम करने में शर्म नहीं आती है। बल्कि किसी काम को मैं जितना खुलकर बिना शर्म के करता हूँ, वो काम उतना ही अच्छा होता है।

स्कूल में सीखने और इस काम को प्रेक्टिकल रूप से सीखने में बहुत फर्क है। स्कूल में ऐसी चीजों को रटाते हैं, जो जीवन में काम नहीं आने वाली है। गलती होने पर स्कूल में तो सज़ा ही मिलती है, वहॉ गलती करके सीखने की कोई गुंजाइश ही नहीं है। यहॉ मुझे उस्तरा पकड़कर चलाने के लिए ब्लैकबोर्ड पर लिखकर सिखाने की जरूरत नहीं पड़ी! यह काम एक प्रकार की कला है और जीविका चलाने का जरिया भी। स्कूल में रहकर यह नहीं सीखा जा सकता कि कैसे जीना है, कैसे कमाना–खाना है। नौकरी का लालच जरूर दिया जाता है।

अगर स्कूल–टीचर पढ़ाई के बाद **काम दिलाने की गारण्टी** दे, तो उतना बुरा नहीं है। लेकिन सरकार या टीचर काम दिलाने का वादा कर ही नहीं सकते। अगर काम मिल भी जाए, तो वो दूसरों की गुलामी ही होगी। स्कूल दूसरों के लिए मेहनत करना सिखाती है, वो आपकी योग्यता का प्रमाण–पत्र नहीं देती, बल्कि कागज का टुकड़ा देकर आपको खरीदती है।

अभी कुछ समय पहले मेरे चचेरे भैया से फिर मुलाकात हुई। आजकल वे एम.आर.शिप कर रहे हैं। एलोपैथी दवाइयों की मार्केटिंग कर रहे हैं। बोले – मेहनत खूब करनी पड़ती है, डॉक्टरों के दर–दर भटकना पड़ता है, उनसे उसी कम्पनी की दवा खरीदने की रिक्वेस्ट करनी पड़ती है। मैंने कहा कि इस काम में आपका अपना क्या है? फायदा तो कम्पनी का है और भीख आपको मॉगनी पड़ती है।

– रवि सेन, 8, सोना सेहरी, दाता भैंरू, कुम्हारवाड़ा,
उदयपुर, फोन : 092140–10719

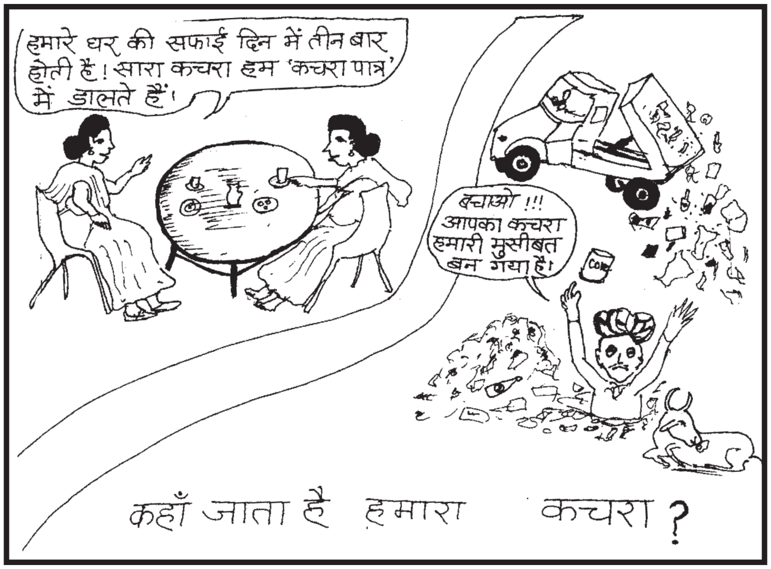
हमारे घर की सफाई दिन में तीन बार होती है। सारा कचरा हम 'कचरा पात्र' में डालते हैं।
बचाओ !!! आपका कचरा हमारी मुसीबत बन गया है।
COKE
कहाँ जाता है हमारा कचरा?

मैं और मेरे उस्ताद

– जसबीर सिंह <jassiphotos@hotmail.com>

मैंने ढोलक बजाना किसी इंस्टीट्यूट में जाकर नहीं सीखा। स्कूल के कार्यक्रमों में ढोलक बजाने का मौका मिल जाता था, पर वहाँ कोई सिखाने वाला नहीं था। ढोलक और ढोल बजाने का ज्यादा अभ्यास मुझे तब हुआ, जब हमारे मोहल्ले में हर सण्डे को कीर्तन करने वाले लोग आते थे। मैं उनके कीर्तन में ढोलक बजाता था। मुझे लगने लगा कि मुझे इसका और गहराई से अभ्यास करना चाहिए। तो मैंने इसे अपना प्रोफेशन बनाने की सोची। लेकिन बीच में घर वाले आ गए, बोले – यह हमारा काम नहीं है! लोग क्या कहेंगे! हमारे रिश्तेदार क्या कहेंगे! मुझ पर स्कूल जाने के लिए दबाव डालते रहे। अन्ततः बी.ए. पूरी किए बिना मैंने कॉलेज छोड़ दिया।

स्कूल में जाना वैसे मुझे शुरू से ही पसन्द नहीं था जी। ऐसी कोई इच्छा नहीं थी कि मैं कोई अच्छे नम्बर लाऊँ और कोई नौकरी करूँ। टीचर्स हमेशा यही कहते थे कि यह तो ढोलक बजाता है और इसे तो जीवन में यही करना है। ढोलक बजाने की बात को वे इस तरह कहते थे जैसे यह बहुत घटिया किस्म का काम हो! कुछ टीचर्स का दबाव था कि मुझे पढ़ाई में ध्यान देना चाहिए। तब मुझे महसूस होता था कि ये तो मुझे मेरे पसन्दीदा काम करने से रोक रहे हैं और वो सब करवाना चाहते हैं जो मुझे पसन्द नहीं है।

एक बार मैं ऐसे ही घर में बैठा हुआ था। मेरे एक अंकल आए और बोले – यार मैं शादियों में विडियो शूटिंग का काम करता हूँ, तो तू भी मेरे साथ चल। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मैं ऐसा काम करूँगा। पर मैंने उनके साथ कुछ समय काम किया और फिल्म मेकिंग से जुड़े अन्य लोगों से मिला।

एक दिन मैं चन्नीजी (एक दोस्त के पापा) से मिला। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं दूरदर्शन के लिए काम कर सकता हूँ। मैंने कभी बीटा कैम हाथ में नहीं पकड़ा था, लेकिन फिर भी मैंने तुरन्त हाँ कर दी। दूरदर्शन के साथ मैंने 3 महीने काम किया। उसके बाद मैं पूना में फिल्म मेकिंग का डिप्लोमा करने गया। इस के लिए मुझे तीस हजार रुपये खर्च करने पड़े। और उसमें जो मैंने सीखा था, वो लगभग मैं पहले से ही जानता था। मैंने देखा कि वहाँ का माहौल भी स्कूल जैसा ही है। एकदम वैसा ही – रट्टाफिकेशन! ये–ये चीजें आप रट लो, बस यही काम आएगा, इसके अलावा आपको कुछ नहीं सोचना है। मेरे ख्याल से सभी इंस्टीट्यूट्स में ऐसा ही होता है।

एक दिन चन्नीजी ने मुझे बताया कि तुम्हें शिक्षान्तर में होने वाले फिल्म–मेकिंग वर्कशॉप में जाना चाहिए। मैंने पहले तो उनको मना कर दिया कि 10 दिन के वर्कशॉप में वे लोग मुझे क्या सिखाएँगे! मुझे तो सब–कुछ आता है। उनके आग्रह पर मैं यहाँ आ तो गया, लेकिन शुरूआत में मुझे अजीब लग रहा था। क्योंकि यहाँ पर हर एक छोटी चीज पर भी सबके साथ चर्चा कर रहे थे। दूसरे दिन से मुझे लगने लगा कि फिल्म मेकिंग के लिए आपस में सबके साथ बातचीत करना और सबके अलग–अलग नजरियों को समझना कितना जरूरी है।

दूरदर्शन और अन्य फिल्म मेकिंग के 7 साल के अनुभवों में मैं कभी ऐसी प्रक्रियाओं से नहीं गुजरा। मैंने पहली बार महसूस कि मैंने आज तक कभी किसी साउण्ड को ध्यान से नहीं सुना। कभी किसी दृश्य को गहराई से नहीं देखा। उदाहरण के लिए यहाँ पर एक ग्रुप ने लकड़ी काटने के कारखाने पर फिल्म बनाई, जिसमें उन्होंने पेड़ों की कटाई से अन्य जीवों व प्रकृति पर होने असर को पूरी संवेदनशीलता से दिखाया है। हालाँकि मैंने भी टिम्बर के कारखानों पर बहुत कुछ शूट किया है, लेकिन उसे कभी उस नजरिये से देखा ही नहीं कि इससे क्या–क्या नुकसान होता है?

मुझे लगता है कि किसी इंस्टीट्यूट में जाकर सीखने के बजाय हर इंसान स्वयं करके और उस काम को करने वाले किसी उस्ताद के पास जाकर सीखे, तो ही वास्तविक सीखना होता है। मुझे अपने जीवन में ऐसे कुछ उस्तादों से मिलने का मौका मिला है। मैंने अनुभव किया है कि **टीचर और उस्ताद** में बहुत फर्क होता है। टीचर कोई चीज आपको इसलिए बताएगा, क्योंकि वो आपसे पैसा लेता है। लेकिन उस्ताद के साथ जो सम्बन्ध होता है, वो पैसे से जुड़ा हुआ नहीं होता। वो आपको इसलिए सीखने में मदद करता है, क्योंकि वो खुद भी जिज्ञासु होता है और उसे रुचि रखने वाले उपयुक्त पात्र को सिखाने में मजा आता है। टीचर हमेशा अपनी बात को थोपता है और बताता है कि जो वह कहता है, वही सत्य है। वहाँ अलग सोचने और अलग हटकर करने की गुंजाइश नहीं होती। इसलिए मुझे तो टीचर व टीच दोनों शब्द ही नापसन्द है।

मैं तो सोच रहा हूँ कि जब मेरे बच्चे होंगे, तो मैं उनको कभी स्कूल नहीं भेजूँगा। मेरा छोटा भाई भी स्कूल नहीं जाता है, उसने आठवीं के बाद स्कूल छोड़ दिया। वो बहुत क्रिएटिव है, अगर वो स्कूल में और रह जाता, तो दब कर रह जाता जी।

जसबीर सिंह, # 1518, सेक्टर – 45
सी, चण्डीगढ़ फोन : 9915106466

रिश्तों में कला की प्रेरणा

– चंचल गोखरु
<chanchal_gokhru@yahoo.co.in>

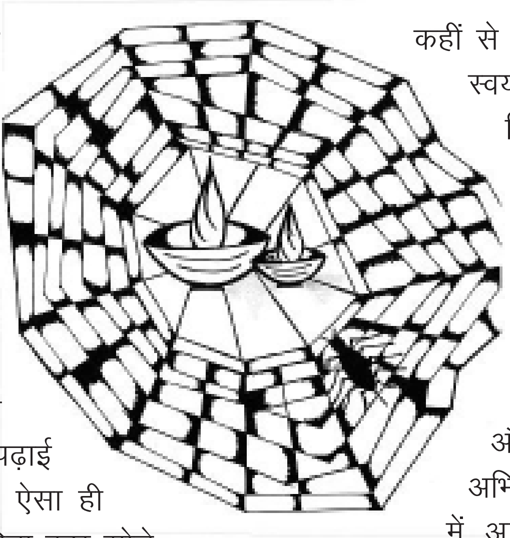

मुझे रंग, चित्र ये सब आकर्षित किया करते थे। बहुत बार कई चित्रों को बहुत ध्यान से देखती रहती थी और मन में सोचती थी कि ये कैसे बने होंगे? मेरा भी चित्र बनाने व रंग भरने का मन होता था। लेकिन साथ में यह डर था कि मैंने इसके लिए कोई औपचारिक पढ़ाई नहीं की है, तो यह कैसे कर पाऊँगी। फिर ऐसा ही सोचकर मैं मायूस हो जाती। एक दिन मैंने बिना कुछ सोचे पेंसिल हाथ में उठाई और चित्र बनाना शुरू किया और बस बनाती गई। जब चित्र पूरा हुआ तो मुझे भी विश्वास नहीं हुआ कि यह चित्र मैंने बनाया है। बस फिर रोजाना रंगों के साथ नए–नए प्रयोग करने लगी और कुछ ही समय बाद मेरा डर स्वतः ही गायब हो गया।

लेकिन अब तक मैंने जो चित्र बनाए थे, वे किसी और के बनाए गए चित्रों की पूरी या थोड़ी नकल ही थे। पर मुझमें इतना आत्मविश्वास तो आ गया कि मैं रंगों का प्रयोग बहुत आसानी से कर लेती थी। लेकिन यह तो मेरी स्वयं सीखने की प्रक्रिया में रंगों व ब्रश से पहचान मात्र थी। अब मैं अपने चित्रों व रंगों में अपनी अभिव्यक्ति करना चाहती हूँ। लेकिन मन में फिर वही डर आने लगा कि क्या मैं बिना आर्ट–कोर्स किए ऐसा कर पाऊँगी। फिर मुझे लगा कि जो कलाकार लोग हैं, उनसे मुझे उनके अनुभवों और उनकी कला की शुरूआत आदि के बारे में बात करनी चाहिए।

मैं शिक्षान्तर, उदयपुर में गई। यहाँ से जुड़े कलाकारों से बात की। यहाँ पर मैं सबसे पहले शाहिद परवेज से मिली। मैंने पहली बार किसी कलाकार की कलाकृति की शुरूआत से लेकर उसके पूर्ण होने तक की प्रक्रिया देखी। मैंने महसूस किया कि इस पूरी प्रक्रिया के दौरान कलाकार भी मेरी तरह बहुत सारी जगह असमंजस में होता है, वो भी प्रयोग और परीक्षण से सीखता है। इससे मेरा आत्मविश्वास और मजबूत हुआ कि मैं भी अपनी अभिव्यक्ति अपने मनचाहे रंगों से कर सकती हूँ। शाहिद ने हमारी बातचीत के दौरान एक बात कही कि जो कुछ भी उसने कला के विषय में स्कूल या कॉलेज में सीखा था, वही खुलकर अपनी अभिव्यक्ति करने में सबसे बड़ी बाधा थी और वो सब भुलाने में मुझे बहुत समय लगा और तभी तो मैं अपनी वास्तविक कला को खोज पा रहा हूँ।

उदयपुर में ही मैं देश के विख्यात कलाकार श्री परमानन्द चोयल से भी मिली। उनसे हुई छोटी सी बातचीत में उन्होंने बहुत बड़ी बात कही, जो मेरे मन को छू गई। उन्होंने कहा कि कहीं से इतना नहीं सीख सकता, जितना स्वयं की कलाकृति से। वही उसे सिखाती है। जब मैं इस बात को अपने जीवन में खोजने लगी तो लगा कि अब तक मैंने जितना भी सीखा था, वो सब मुझे अपनी पेंटिंग्स ने ही सिखाया था।

मैंने जाना कि बिना किसी औपचारिक कोर्स के कोई भी अपनी अभिव्यक्ति अपने रंगों में अपने चित्रों में आसानी से कर सकता है। बस जरूरत है तो समर्पण, मेहनत और आत्मविश्वास की। यहाँ से मुझे एक दिशा मिली है। अब इतना आत्मविश्वास मुझमें पैदा हुआ कि मैं बिना किसी औपचारिक पढ़ाई के अपनी कला विकसित कर सकती हूँ।

उदयपुर में एक कला–प्रदर्शनी के दौरान मेरी मुलाकात महाराष्ट्र के कलाकार से हुई, जो अमूर्त पेंटिंग्स बनाते हैं। उनके विचारों से मैं असन्तुष्ट हुई। जैसाकि उन्होंने कहा कि ''अगर वास्तविक कलाकार बनना है, तो अपनी कला की खोज में हमें सब–कुछ भूल जाना होगा कि हमारा कोई परिवार, कोई रिश्ते और कोई जिम्मेदारी भी है! इन सबसे दूर होकर ही हम अपनी कला को समझ सकते हैं।'' मैंने इस बात पर गहराई से चिन्तन किया। मुझे लगता है कि कला के माध्यम से तो हमारा रिश्ता जुड़ता है – अपनी अभिव्यक्ति से, रंगों से, प्रकृति से, भावनाओं से...तो फिर हम अपने जीवन से गहराई से जुड़े रिश्तों से दूर होकर कैसे आनन्दपूर्वक अपनी अभिव्यक्ति दे सकते हैं। प्रकृति में बहुत सारी चीजें बहुत सुन्दर हैं, लेकिन अगर किसी बात से मेरा मन उदास है, तो प्रकृति की सबसे सुन्दर चीज भी मुझे आनन्द नहीं देती। यानी हमारा मन हमें उससे जोड़ता है। हमारी अभिव्यक्ति के साथ हमारी आत्मा का जुड़ाव है, मन का जुड़ाव है।

अभी भी मेरे मन में यह बड़ा प्रश्न है, जिस पर मैं सब कलाकारों से बातचीत करना चाहती हूँ कि क्या हम रिश्ते, परिवार सब भूलकर दुनिया से दूर होकर ही अपनी कला को बढ़ा सकते हैं या अपने रिश्तों को अपनी ताकत एवं प्रेरणा बनाकर भी हम कला के नवीन प्रयोग कर अपनी कला को आधार दे सकते हैं? यहाँ मेरी मुलाकात मीना बया से भी हुई, जिनका मानना है कि हमारी हर अभिव्यक्ति हमारे जीवन से जुड़ी है। हमसे जुड़े लोगों और अन्य लोगों से भी हमारी अभिव्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। तो क्या ये विचार ज्यादा सत्य के करीब हैं?

– चंचल गोखरू, ए – 303, पथिक विहार, सेक्टर 62,
टोट मॉल के पीछे, नोएड़ा (उ.प्र.)

दस गुण्ठा खेती

कुछ दिनों पूर्व नेमावर गॉव में दस गुण्ठा यानि कि दस हजार स्क्वायर फुट या लगभग आधा बीघा जमीन में प्रयोग कर रहे श्री दीपक सचदेव के यहां जाने का मौका मिला।

इस प्रयोग का मूल दर्शन है कि भारत में छोटी जोत वाले बहुत से किसान है उनके पास एक या दो बीघा जमीन है। उस किसान के परिवार को भी इस प्रयोग से आसानी से सालभर अनाज, फल और सब्जियां मिल सकती है। इस प्रयोग की खास बातों में एक बात यह है कि इसमें ज्यादा खुदाई नहीं की जाती है। साथ ही साल दो साल मेहनत करने के बाद खेत में अलग से कोई भी सरकारी खाद नहीं डालनी पड़ती है। जो खतपतवार खेतों में पैदा होती है, उसी का प्रयोग फसल के खाद के रूप में किया जाता है। इस तरह से निरन्तर प्रयोग करते रहने से जमीन की उर्वरता जंगल में बनी हुई मिट्टी की तरह हो जाती है।

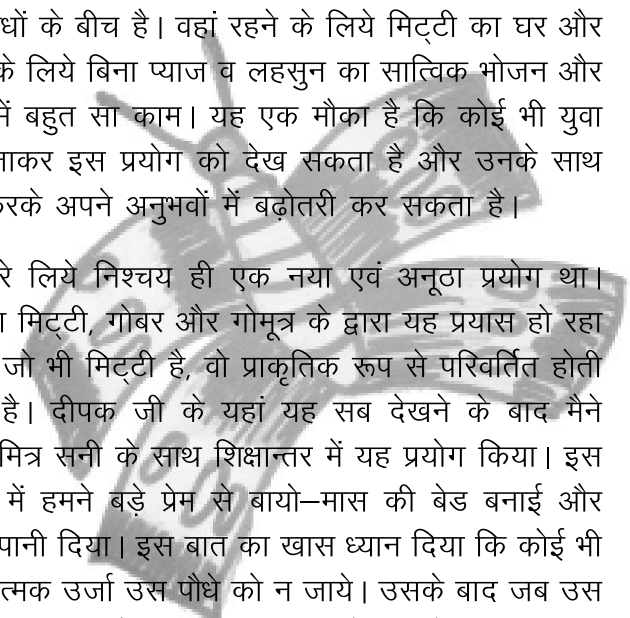

दीपक जी के आश्रम का नाम है नेप्च्यूको सांइस यानि की प्रकृति का विज्ञान। यह जगह नर्मदा नदी के किनारे हरे भरे पेड़ पौधों के बीच है। वहां रहने के लिये मिट्टी का घर और खाने के लिये बिना प्याज व लहसुन का सात्विक भोजन और खेतों में बहुत सा काम। यह एक मौका है कि कोई भी युवा वहां जाकर इस प्रयोग को देख सकता है और उनके साथ श्रम करके अपने अनुभवों में बढ़ोतरी कर सकता है।

यह मेरे लिये निश्चय ही एक नया एवं अनूठा प्रयोग था। मसाला मिट्टी, गोबर और गोमूत्र के द्वारा यह प्रयास हो रहा है कि जो भी मिट्टी है, वो प्राकृतिक रूप से परिवर्तित होती रहती है। दीपक जी के यहां यह सब देखने के बाद मैने अपने मित्र सनी के साथ शिक्षान्तर में यह प्रयोग किया। इस प्रयोग में हमने बड़े प्रेम से बायो–मास की बेड बनाई और अमृत पानी दिया। इस बात का खास ध्यान दिया कि कोई भी नकारात्मक उर्जा उस पौधे को न जाये। उसके बाद जब उस पौधें की वृद्धि और उसका विकास देखा, तो यह विश्वास पुख्ता हो गया कि प्रकृति में जो कोई भी चीज उगती है या उगाई जाती है, उस पर हमारे मन के भावों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो आप सोचते है वो जीव या पौधा वैसा ही फल देता है या फिर विकास करता है। जो वो फल देता है, उसमें ये भाव मौजूद रहते है। जब हम वो फल या अनाज खाते है तो वो उसी तरह की उर्जा हमें देते है।

— पन्नालाल पटेल

<shikshantar@yahoo.com>

मध्यप्रदेश के नेमावर गॉव में श्री दीपक सचदेव पिछले कुछ सालों से दस गुण्ठा खेती का प्रयोग कर रहे हैं। इससे पहले ये अपने गुरु श्री दाभोलकर (महाराष्ट्र) के साथ काम कर चुके हैं, जो पिछले 40 सालों से इस तरह की खेती कर रहे हैं। दीपक जी के यहॉ दो स्वपथगामी साथियों ने कुछ समय के लिए काम किया। उनके अनुभव नीचे दिए गए हैं। दस गुण्ठा खेती सीखने के लिए सम्पर्क कर सकते हैं :- श्री दीपक सचदेव, गॉव - नेमावर, जिला- देवास, मध्यप्रदेश फोन : 93295–70960

मैंने सुना था कि कम जगह में भी खेती की जा सकती है और रोजमर्रा की जरूरत की लगभग सारी खाद्य–सामग्री की पूर्ति उससे हो सकती है। उदयपुर शहर में रहते हुए मैं अपनी छत पर सब्जियॉ उगाने के कुछ प्रयोग कर चुका था। लेकिन मेरे सामने विशेष समस्या पानी की थी। कम पानी में खेती कैसे हो सकती है यह सवाल हमेशा से मन में था।

दीपक जी ने जो खेती के जो प्रयोग किए हैं, उनमें ज्यादा पानी की जरूरत नहीं है। यहॉ पर वे खेत में होने वाली खरपतवार, चारा, फसलों के सूखे पत्ते आदि को खेत में ही बिछा देते हैं, जिससे जमीन में नमी बनी रहती है। इससे पानी की जरूरत भी कम होती है और मल्चिंग से जमीन में बहुत सारे जीव पैदा हो जाते हैं, जो फसलों के लिए फायदेमन्द होते हैं। इस तरह खेत में पैदा हुई हर चीज का उपयोग भी हो जाता है, जमीन की गुणवत्ता बढ़ती है और पौधों का विकास भी अच्छा होता है।

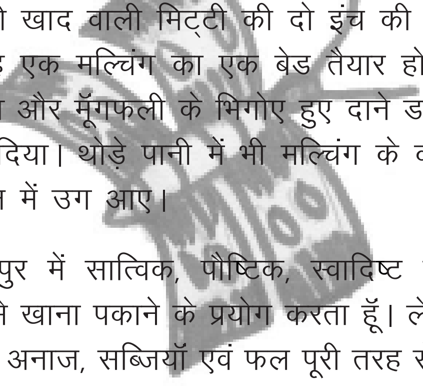

मैंने यहॉ रहकर पहली बार खूब घास काटी! उस घास को सुखाया, फिर उसे बारीक काटकर 24 घण्टे के लिए अमृत पानी (गोबर, गोमूत्र एवं गुड़) में भिगोया। 3 X 3 फीट के क्षेत्र में हमने उस घास को बिछाया और उसमें एक चौथाई मिट्टी की परत बिछाई और हल्का–हल्का अमृत पानी छिड़का। इस प्रक्रिया को तीन–चार बार दोहराया। उसके बाद देशी खाद वाली मिट्टी की दो इंच की परत बिछाई। इस तरह एक मल्चिंग का एक बेड तैयार हो गया। इसमें हमने मूँग और मूँगफली के भिगोए हुए दाने डालकर मिट्टी से ढक दिया। थोड़े पानी में भी मल्चिंग के कारण ये दाने मात्र दिन में उग आए।

मैं उदयपुर में सात्विक, पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं प्राकृतिक तरीकों से खाना पकाने के प्रयोग करता हूँ। लेकिन शहर में रहते हुए अनाज, सब्जियॉ एवं फल पूरी तरह से जैविक नहीं मिल पाते हैं। अगर मुझे पूरी तरह से खाने को पौष्टिक बनाना है, तो मुझे जैविक सब्जियॉ एवं अनाज चाहिए। मुझे लगता है कि हमारा स्वास्थ्य, खानपान, खेती ये सब आपस में जुड़े हुए हैं। इसलिए स्वयं के खानपान और खेती के बारे में सोचे बिना स्वास्थ्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए मैं अब सोच रहा हूँ कि खाना बनाने के साथ–साथ खाना उगाने की पूरी प्रक्रिया के साथ जुड़ूँ। मल्चिंग, अमृत पानी से प्राकृतिक का प्रयोग मैंने भी उदयपुर में शुरू किया है।

— सनी गन्धर्व

<sunnydewali@gmail.com>

जुगाड़ कर-करके खोजी
कम खर्चे की टेक्नोलॉजी

– शेख हारून मंसूरी

मेरे घर से स्कूल के रास्ते में लोहे का मार्केट हुआ करता था, जहॉ लोग लोहे के बड़े–बड़े हथौड़ों से लोहे की चीजें बनाते थे। लोहा बाजार में लोगों को काम करते हुए देखने में मेरा मन ज्यादा लगता था।

जब मैं छठी कक्षा में था, तब एक दिन जब मैं घर से बाहर जा रहा था, तो मैंने देखा कि एक आदमी फुटपाथ पर बैठकर पीपों के ढक्कर लगा रहा था। मेरा मन हुआ कि मुझे भी यह काम सीखना चाहिए। तो दूसरे ही दिन मैं कबाड़ी की दुकान से कुछ पुराने औजार वगैरह खरीद लाया और घर पर ही पीपे काटकर उनके ढक्कन तैयार करने लगा। धीरे–धीरे पड़ौस के लोग भी मुझसे पीपों के ढक्कन लगवाने लगे। अपने बैग में औजार डालकर स्कूल ले जाने लगा। इसी वजह से कई बार टीचर्स ने पिटाई भी की, एकाध बार मेरे औजार भी जब्त कर लिए। पिताजी से भी डॉट पड़ी, पर मॉ ने थोड़ा सपोर्ट किया। मैंने तय कर लिया था कि मुझे कुछ हाथ का हुनर सीखना है।

स्कूल से निकलते ही मैं बाजार में चला जाता और दुकानदारों से पूछता कि उनको पीपे कटवाना है या पीपों में ढक्कन लगवाने है क्या? मुझे इस तरह पूछने और बाजार में ऐसे काम करने में कोई शर्म नहीं आती थी। उस समय एक पीपा काटने के मुझे 50 पैसे मिलते थे। एक घण्टे में मैं लगभग 25–30 पीपे काट देता था, जिससे मुझे खूब पैसा मिल जाता था। कबाड़ के काम के साथ–साथ मैं सब्जी बेचने का काम भी करने लगा। पिताजी मेरे इन कामों से शुरूआत में तो नाराज थे, लेकिन जब उनको लगा कि मुझे तो अपने जीवन में ऐसे काम ही करने हैं, तो वे भी मदद करने लगे। आठवीं के बाद मैंने स्कूल छोड़ दी।

उसके बाद मेरी मन हुआ कि मैं कूलर बनाने का काम सीखूँ। तो मैं कूलर बनाने वाले की दुकान पर गया और उससे सीखने की जिज्ञासा दिखाई। तो उसने कहा कि मैं कुछ पैसे–वैसे तो दूँगा नहीं, कुछ खर्चा जरूर दे दूँगा। दुकानदार ऐसा था कि वो ज्यादातर समय दुकान पर नहीं रहता था। इसलिए मुझे दुकान पर पड़े कबाड़ और औजारों का इस्तेमाल करते हुए अपनी मर्जी से सीखने और प्रयोग करने के मौके मिल जाते थे। मैंने कई चद्दर के कूलर बनाए, डिजीटल कूलर भी बनाए। वहीं पर मैं बाल्टियों के बंगड़ लगाना, पैंदे लगाना, पीपों की मरम्मत आदि काम करता रहा। एक दिन मैं एक खिलौना फैक्ट्री में गया, जहॉ मैं इंग्लैण्ड के फिलिप बर्न से मिला। फिलिप भाई टेक्नीकल काम करते थे, जैसे – मोटर में पुरली डालना, बोर करना आदि। उनको ऐसे कामों में मदद के लिए एक लड़के की जरूरत थी। मैंने उनके साथ काम किया। फिलिप भाई और मैं साथ मिलकर काम करते थे और एक–दूसरे से सीखते थे। हमने साथ मिलकर कई प्रयोग किए। आसान एवं कम कीमत वाला सोलर कूकर बनाया, जिसमें मात्र तीन घण्टे में हमारा खाना बन जाता था।

एक बार हम दोनों ने एक हैण्ड–स्टेंसिल–प्रिंटर मशीन बनाने की सोची। पहले हमने उसे चद्दर पर बनाया, फिर प्लाई–वुड पर प्रयोग किया, लेकिन छपाई ठीक से नहीं हुई। फिर मैंने उनको बताया कि हमें यह 'न्यू–वुड' पर बनाना चाहिए। यह प्रिंटर मशीन बहुत अच्छी बनी। इसमें मुश्किल से चार सौ रुपये का खर्चा आया। ऐसी प्रिंटर मशीनें बना–बनाकर मैंने बेची भी।

एक बार जब फिलिप भाई नागपुर जाकर वापस लौटे, तो उन्होंने बताया कि अमरकंटक के पास छोटे किसानों के पास सिंचाई की सुविधाऍ नहीं है। तो हम ऐसा पम्प बनाऍ, जो बैलों से चलाया जा सके। 15–20 दिन शोध करने के बाद हमनें बैलों से चलने वाला पम्प बनाया। लेकिन उससे कुछ खास सफलता नहीं मिल पाई। फिर हमने सोचा कि अगर बैल यह पम्प चलाएगा, तो आदमी क्या करेगा! तो क्यों नहीं ऐसा पम्प बनाया जाए, जो आदमी चला सके। हमने जीप का पुराना टायर काटकर उससे हाथ से चलने वाला वाटर–पम्प बनाया। फिर यह विचार आया कि इसे पैरों से चलने वाला पम्प बनाया जाए, ताकि पैरों की ताकत का इस्तेमाल किया जा सके। हमने जीप के टायर के साथ एक स्कूटर का टायर लेकर साइकिल–पैडल से चलने वाला वाटर–पम्प बनाया। यह प्रयोग बहुत सफल रहा। इसमें ज्यादा ताकत भी नहीं लगानी पड़ती है और 30–40 फीट से आसानी से पानी निकाला जा सकता है। इस तरह एप्रोप्रिएट–टेक्नोलॉजी पर हमने साथ–साथ काम किया। इसके अलावा मैंने फेब्रिकेशन का खूब काम किया – लोहे के दरवाजे, खिड़कियॉ, टेबल–कुर्सियॉ, चूड़ी–स्टैण्ड आदि।

फिलिप भाई के जाने के बाद मैंने उस संस्था में काम करना छोड़ दिया और अपने एक प्लॉट में फेब्रिकेशन का वर्कशॉप शुरू किया, जो आज भी है। मैं लकड़ी के फर्नीचर एवं खिलौने बनाने का काम भी जानता हूँ। लेकिन मैं कोशिश कर रहा हूँ कि ज्यादातर ऐसे प्रयोग करूँ, जो कबाड़ की चीजों से कम लागत में बन सके और उनमें प्रकृति का नुकसान भी न हो।

मेरा मकसद है कि जो भी हुनर मैंने किसी से सीखे हैं या खुद करके सीखे हैं, उनको मैं अपने आसपास के लोगों के साथ बॉटूँ और हम मिलकर बड़े साधनों पर निर्भरता को खत्म कर सकें। जो लोग इस तरह के कामों को सीखने की जिज्ञासा रखते हैं और अपने जीवन में उनका उपयोग करना चाहते हैं, वे सम्पर्क कर सकते हैं।

– शेख़ हारून मंसूरी s/o शेख़ ख़लील मंसूरी, खेड़ीपुरा,
बेलदार मोहल्ला, खारे कुऍ के पास, हरदा (म. प्र)

''पहिये का आविष्कार सबसे अच्छा आविष्कार है और उसके बाद साइकिल है।''

अब मैं यह बोलने वाला कौन होता हूँ! मैं 12 सालो से भी ज्यादा समय से मज़े से साइकिल चला रहा हूँ। उसके उपर मैंने उदयपुर की बहुत सी घाटियों को पार किया है। वो मेरे ज़िन्दगी के सुनहरे सफर थे। उस पर पेडल मारकर ढलान में छोड़ देना, ठण्डी हवा का पसीने पर गिरना काफी अच्छा लगता हैं। साइकिल अब तक का मेरा पसंदीदा वाहन है।

पर अब... कुछ समय से मैं, पन्नालाल जी, डेनियल और राम एक मशीन पर काम कर रहे थे। जिससे अब साइकिल केवल वाहन नहीं रह सकी। वो अब साइकिल मिक्सर के रूप में जानी जाने लगी है। इस प्रयोग को करने के पश्चात् हमें लगता है कि प्रकृति के साथ रहते हुए (प्रकृति को बिना नुकसान पहुँचाए) मशीन का उपयोग हो सकता है। यह प्रयोग सस्ता भी है और इससे प्रकृति को भी कोई नुकसान नहीं होगा। इसे बनाना इतना आसान है –

साइकिल के अगले पहिए का हब लिया तथा एक्सल के एक सिरे पर रबर टायर के दो गोल छल्ले काटकर लगाए। अब इस हब को एक लकड़ी के चौकोर टुकड़े पर छेद कर उसमें फिट कर दिया। साइकिल के पीछे वाले पहिए से हब को इस प्रकार सटाया कि हब में लगे रबर के छल्ले टायर को छूते रहें। अब इसे लकड़ी के स्टेण्ड सहित पिछली सीट पर कस दिया। हब के उपर की ओर मिक्सर वाली फिरकी लगाई और उस पर मिक्सर का जार लगा दिया। इस तरह साइकिल पैडल वाली मिक्सी तैयार हो गई।

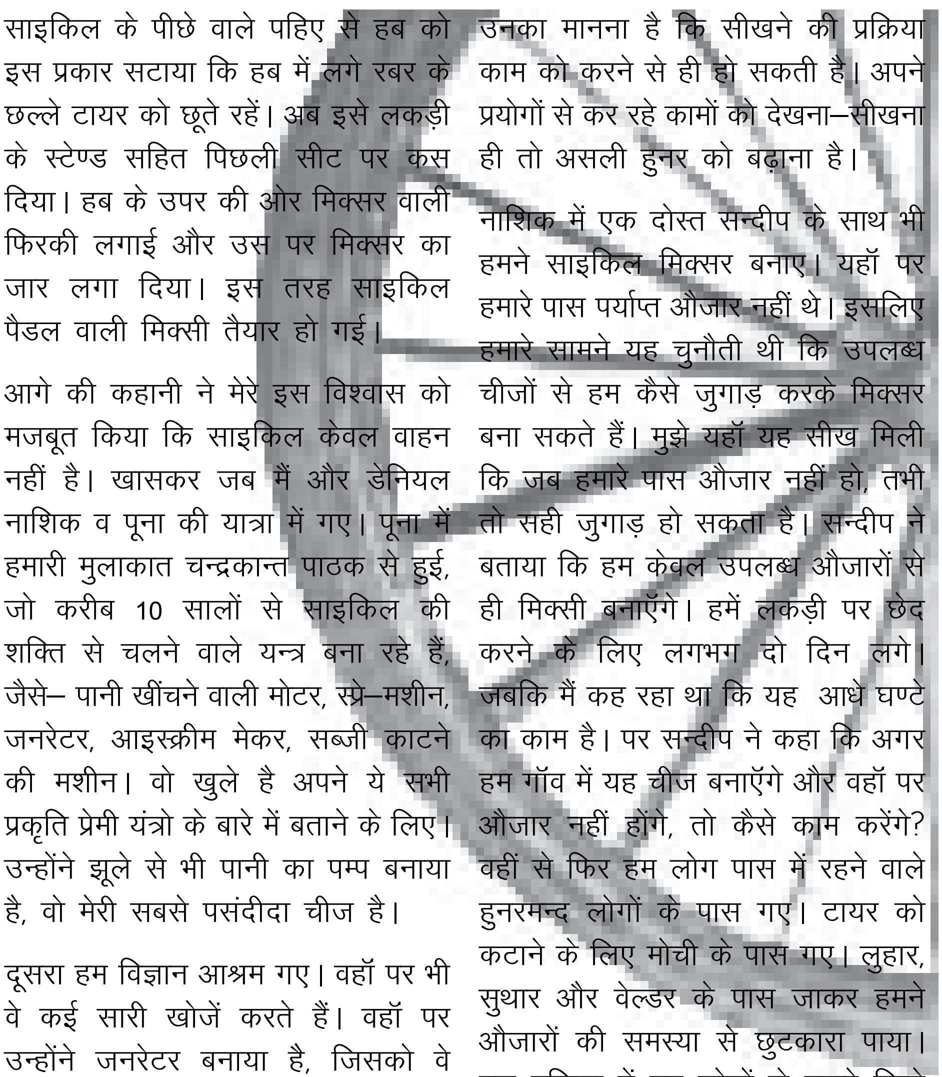

आगे की कहानी ने मेरे इस विश्वास को मजबूत किया कि साइकिल केवल वाहन नहीं है। खासकर जब मैं और डेनियल नाशिक व पूना की यात्रा में गए। पूना में हमारी मुलाकात चन्द्रकान्त पाठक से हुई, जो करीब 10 सालों से साइकिल की शक्ति से चलने वाले यन्त्र बना रहे हैं, जैसे– पानी खींचने वाली मोटर, स्प्रे–मशीन, जनरेटर, आइस्क्रीम मेकर, सब्जी काटने की मशीन। वो खुले है अपने ये सभी प्रकृति प्रेमी यंत्रो के बारे में बताने के लिए। उन्होंने झूले से भी पानी का पम्प बनाया है, वो मेरी सबसे पसंदीदा चीज है।

दूसरा हम विज्ञान आश्रम गए। वहाँ पर भी वे कई सारी खोजें करते हैं। वहाँ पर उन्होंने जनरेटर बनाया है, जिसको वे रोज इस्तेमाल करते हैं। वहाँ के बच्चे ही काफी सारे प्रयोग करते हैं। जैसे उन्होंने साइकिल पैडल से संचालित बिजली मशीन, ट्रेक्टर, मकान आदि कई प्रयोग किए है। उनका मानना है कि सीखने की प्रक्रिया काम को करने से ही हो सकती है। अपने प्रयोगों से कर रहे कामों को देखना–सीखना ही तो असली हुनर को बढ़ाना है।

नाशिक में एक दोस्त सन्दीप के साथ भी हमने साइकिल मिक्सर बनाए। यहाँ पर हमारे पास पर्याप्त औजार नहीं थे। इसलिए हमारे सामने यह चुनौती थी कि उपलब्ध चीजों से हम कैसे जुगाड़ करके मिक्सर बना सकते हैं। मुझे यहाँ यह सीख मिली कि जब हमारे पास औजार नहीं हो, तभी तो सही जुगाड़ हो सकता है। सन्दीप ने बताया कि हम केवल उपलब्ध औजारों से ही मिक्सी बनाएँगे। हमें लकड़ी पर छेद करने के लिए लगभग दो दिन लगे। जबकि मैं कह रहा था कि यह आधे घण्टे का काम है। पर सन्दीप ने कहा कि अगर हम गॉव में यह चीज बनाऍगे और वहाँ पर औजार नहीं होंगे, तो कैसे काम करेंगे? वहीं से फिर हम लोग पास में रहने वाले हुनरमन्द लोगों के पास गए। टायर को कटाने के लिए मोची के पास गए। लुहार, सुथार और वेल्डर के पास जाकर हमने औजारों की समस्या से छुटकारा पाया। इस प्रक्रिया में इन लोगों से हमारे रिश्ते भी बने और इस मानसिकता का भ्रम भी टूटा कि बेसिक औजार तो होने ही चाहिए।

– विशाल सिंह <aachi8@gmail.com>

एक स्वपथगामी दोस्त का पत्र

शिकशांतर आंदोलन मित्रानों,

आप लोगों से मिलकर मुझे भोहद खूशी हूई है। आप लोगो से में भोहद खूब शिखा हूँ। और हमारे गाव वाले लोगों को भी शिखाता हूँ। जइसे प्लास्टिक गाव में मत लावो, क्योंकि गाव में बिमारीया होती है। जसे शहरी घाण {*गन्दगी* } गाव में मत लावो, शहरी घाण लायगे, तो शहर में भेज देना चाहिए। तो हमारे घर में प्लास्टिक अभी कोई नहीं लाता। पेपरबेग का उपयोग करते है। तो हमारे घर से देखते–देखते दोसरे पडोसी भी अभी प्लास्टिक कम करने लगे है।

जब मैं वनवाडी में वापस आया तो मुझे भोहद दुःख हुआ था। क्योंकि यहा पे बिली, कुत्ता और एक बैल मरा था। तो मैने हमारे बाबूजी को पुछा की बाबूजी बैल काहा मरा है। तो उसने कहा की जंगल में। मै ढूढने के लिए जंगल में गया, तो मेरे को बैल की लाश मिली और मै घर आ गया और सोचने लगा की मैं इसका क्या बना सकता हू। मेरे दिमाग मे आया की शिकशांतर में टायर की चपल बनाते है। तो मे अभी चबड़ी {*चमड़े* } की चपल बना सकता हूं। मै सुरी और कयची लेकर जंगल मे गया और बैल के लाश के पास पोहच्या और चबड़ी नीकालने की सुरवात की। और चबड़ी नीकालते समय मुझे भोहद घाण वाश्छ {*बदबू* } आया था। तो मेरे मन मे आता था की जीतने दिन मे शहर मे रहकर मेरे शरीर मे जो घाण {*गन्दगी* } गई थी, उतनी घाण चबड़ी नीकालते समय मेरे शरीर से बाहार आती थी। और मैने चबड़ी नीकाली।

हमारे घर वाले लोगो को पता चल गया की दौलत ने बैल की चबड़ी नीकाली है तो हमारे घर वाले लोग भोहद ही मेरे से नाराज हुय थे। मैने काहा की बैल जींदा था तब हम उस पर भोहद ही प्यार करते थे। अभी मर गया इसलिए क्योकि दुरलक्श करना चाहिए। तो घर वाले चुप बएठे थे। गाव वाले लोगो को पता चला तो सब लोग मेरे से नाराज हुए। और कहने लगे की दौलत पागल हुए है का? तो मैने गाव वाले लोगो से कहा की आप गाव में दारू, टीवी, लड़कीया सेड़ते {*छेड़ते* } है, गांजा पीते है, पत्ते {*ताश* } खेलते है यह बात अच्छी है क्या? वह चुप बयठे। आप लोगो को यह बात अच्छी लगती है का? बुरी लगती है क्या? तो मेरे को यह बात पर जबाब देना आप लोग।

आप लोगो का छोटा दोस्त – दौलत

पता : वनवाड़ी, गॉव वारा, वाया करजत, रायगढ़ (महाराष्ट्र)

जो कभी स्कूल नहीं गए!

— रुचिर <webmaster420@gmail.com>

सिखाने का पहला सिद्धान्त है कि ''कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता।'' — श्री अरविन्द

जब लोग मुझे मेरी स्कूली पढ़ाई के बारे में पूछते हैं, तो मेरा जवाब सीधा सा होता है — ''जहॉ रुकावटें और दबाव हैं, वहॉ सीखना और विकास (growth) नहीं हो सकता।''

मेरे पिताजी ने जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन के साथ काम किया था। वे महाराजा शिवाजीराव विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे। मेरी मॉ बैंक ऑफ इंडिया में काम करती थी। दोनों ने 1983 में अपनी नौकरी छोड़कर सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में काम किया। उन्होंने उत्तर गुजरात में साबरकांठा जिले के एक छोटे से गॉव में काम किया। कई आन्दोलनों के साथ काम किया, जैसे बनास बचाओ आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन। अभी हम गॉधीनगर जिले में जल संग्रहण व स्वच्छता पर काम कर रहे हैं।

उन्होंने तय किया कि ''अगर रुचिर स्कूल जाना चाहेगा, तो हम उसे नहीं रोकेंगे। अगर वो नहीं जाना चाहेगा, तो हम उस पर स्कूल जाने के लिए दबाव नहीं डालेंगे।'' मैं स्कूल नहीं गया। मुझे पेंटिंग करना, संगीत, अलग–अलग जगह घूमना, लोगों से मिलना, आसपास के गॉवों में जाना आदि अच्छा लगता था।

लेकिन एक दिन (जब मैं 10–11 साल का था), मैंने सोचा कि 'मेरे सभी दोस्त स्कूल जाते हैं, तो मैं क्यों नहीं जाता?'' मैंने उनसे बात की, तो उन्होंने कहा, ''ठीक है, अगर तुम जाना चाहते हो, तो एक दिन जाकर देख लो।'' अगले दिन मैं अपने दोस्तों के साथ स्कूल गया। जब टीचर आया, तो सारे स्टूडेंट्स खड़े होकर एक आवाज में बोले — ''गुड मॉर्निंग टीचर!'' मुझे पूरी कक्षा के इस मशीनी–आचरण को देखकर झटका लगा! **यह मशीनी तरह की प्रोग्रामिंग स्कूल में होती है।**

मैं आधी छुट्टी में घर वापस आया और फिर कभी स्कूल नहीं गया। मैंने स्कूल के फायदे–नुकसान के बारे में खोजना–समझना शुरू किया और बिना स्कूल के सीखने की अलग–अलग प्रक्रियाएँ खोजने लगा। मैं मानता हूँ कि सीखने की प्रक्रिया, हमारे भोजन करने की तरह है। अगर मैं स्कूल में होता हूँ, तो दूसरे लोग तय कर करते हैं कि मुझे क्या खाना है, कब खाना है, क्यों खाना है, कहॉ खाना है, कैसे खाना है, कितना खाना है और कौन खिलाएगा!

''क्या'' आपके स्वाद पर निर्भर करता है। मुझे आलू पसन्द है, पर गाजर पसन्द नहीं है। इसी तरह मुझे विज्ञान पसन्द है, पर गणित नहीं। ''कब'' आपके मूड और समय पर निर्भर करता है। ''क्यों'' — असली सीखने के लिए या डिग्री के लिए? ''कहॉ'' — जगह और परिस्थिति पर निर्भर है। लेकिन क्लासरूम की परिस्थितियॉ बिल्कुल अलग है। जब मैं जंगल में हूँ, छत पर हूँ, पेड़ पर हूँ, नदी के पास हूँ या टॉयलेट में हूँ तो मेरे पास मौका और सोचने, समझने और सीखने का समय होता है। ''कैसे'' का तात्पर्य है सीखने–सिखाने की पद्धति से। क्लासरूम एक सिटी–बस की तरह होता है, जिसमें सभी सवार लोग एक तरफ मुँह ताके बैठे होते हैं। सिर्फ एक जना ड्राइव करता है और बाकी सबको उसी दिशा में जाना होता है, जहॉ ड्राइवर ले जाता है। ''कितना'' का अभिप्राय मात्रा से है। कई बार मेरे दोस्त उनके 'होमवर्क' को लेकर बहुत तनाव में रहते हैं। वे कहते हैं, ''क्यों उसने मुझे इतना 'बोझ' दिया है, जबकि उसे मालूम है कि मैं इतना नहीं कर सकता!'' मुझे उतना ही खाना चाहिए, जितना मैं पचा सकता हूँ। अगर मैं ज्यादा खाऊँगा, तो उसे पचा नहीं पाऊँगा और उल्टी कर दूँगा। ''कौन'' का आशय उस व्यक्ति से है, जो पढ़ाता है। मेरे ख्याल से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैंने कई स्कूलों में देखा है कि टीचर्स पढ़ाने में बिल्कुल भी रुचि नहीं रखते हैं।

''सीखना एक सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति है।''

मैं अपनी उम्र के युवाओं के लिए 5 साल तक एक 16 पृष्ठों की मासिक पत्रिका का सम्पादन किया, जिसे मैं अपने 100 से अधिक दोस्तों को भेजता था। मैंने 5 छोटी किताबों को हिन्दी से गुजराती में अनुवादित भी किया है। मेरी संगीत में बहुत रुचि है। मैं तबला, हारमोनियम, बांसुरी, गिटार, वायलिन और सितार आदि वाद्ययन्त्र भी बजा लेता हूँ। मैं वेब–डिजाइनिंग, एनिमेशन, 3डी ग्राफिक्स, फोटोग्राफी भी करता हूँ। मैं उदयपुर फिल्म मेकिंग वर्कशॉप में गया। विडियो फिल्म मेकिंग के बारे में मैं और भी सीखना चाहता था, इसलिए मैं अहमदाबाद में गुर्जरवाणी स्टूडियो गया। उसके बाद मैंने छोटी–छोटी फिल्में बनाईं।

मेरे पिताजी मैकेनिकल इंजीनियर हैं। मॉ बी.ए., एल. एल. बी. है। दोनों चाचा पीएच.डी. हैं। दादाजी रिटायर्ड आई.ए.एस.अधिकारी हैं। दादी डबल ग्रेजुएट है। ऐसे ''उच्च पढ़े–लिखे'' परिवार में स्कूल नहीं जाने का निर्णय शुरूआत में स्वीकारा नहीं गया। कई प्रश्न सामने आए। पर आखिर मेरी स्वयं सीखने की प्रक्रिया और विकास को देखकर सबने प्रोत्साहित करना शुरू किया।

आजकल यह विचार अन्य जगहों पर भी देखने में आ रहा है। गुजरात में भी कई लोग ऐसे हैं, जो 'स्कूल नहीं जा रहे हैं। जैसे नर्मदा जिले के साकवा गॉव में विश्वेण (21) व भार्गव (18) दोनों भाई जैविक खेती कर रहे हैं। कुंजन (21) व क्षिति (18) दोनों बहनें राजकोट जिले के धेधुकी गॉव में हैं। धैवत व जाजवल्य, गुजराती कवि राजेन्द्र शुक्ला के पुत्र हैं, जो कभी स्कूल नहीं गए। सुमी–चन्द्रेश के दोनों बेटे कुदरत व अजन्म्य स्कूल नहीं जाते हैं। मैं खुश हूँ कि मेरे ऐसे कई दोस्त हैं, जो फैक्ट्री–स्कूली व्यवस्था को चुनौती दे रहे हैं।

— रुचिर राजू दीप्ति, जीवनतीर्थ, जूना कोबा, गॉधीनगर 09

जैसा खाओ **अन्न**, वैसा होगा **मन**

— मातादीन राजपूत

बचपन से ही मेरी इच्छा थी कि मैं जड़ी–बूटियों से दवाइयॉ बनाना सीखूँ और अपने इलाके में लोगों का इलाज करूँ, ताकि हमारे गॉव के लोगों को इलाज के लिए कहीं बाहर नहीं जाना पड़े। मन में यह संकल्प कर लिया था कि बुजुर्गों की देशी इलाज की विद्या को सीखना है, क्योंकि यह अगर लुप्त हो गई, तो पूरे गॉव को डॉक्टरों पर निर्भर होना पड़ेगा।

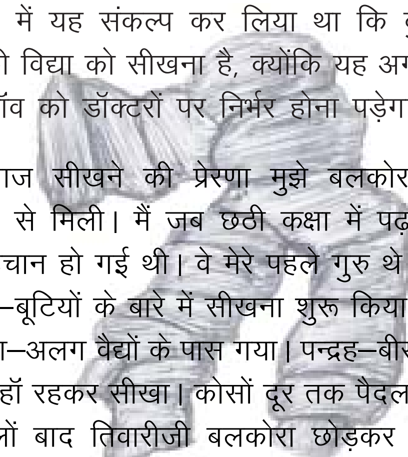

देशी इलाज सीखने की प्रेरणा मुझे बलकोरा गॉव के वैद्य तिवारीजी से मिली। मैं जब छठी कक्षा में पढ़ता था, तभी से उनसे पहचान हो गई थी। वे मेरे पहले गुरु थे। उसी समय से मैंने जड़ी–बूटियों के बारे में सीखना शुरू किया। उसके बाद मैं कई अलग–अलग वैद्यों के पास गया। पन्द्रह–बीस दिन एक–एक वैद्य के यहॉ रहकर सीखा। कोसों दूर तक पैदल चलकर जाता। कुछ सालों बाद तिवारीजी बलकोरा छोड़कर चन्दला गॉव में जाकर रहने लगे। तो उन्होंने कहा कि सीखना है, तो वहॉ भी आ सकता है। फिर मैंने स्कूल छोड़ ही दिया (दसवीं कक्षा के बाद)।

जड़ी–बूटियों व देशी इलाज के बारे में मुझे इतना ज्ञान है कि मैं पीलिया, वातरोग, कब्ज–गैस, बवासीर, आधा–सिरदर्द, लकवा आदि लगभग सभी बीमारियों का इलाज करता हूँ। साथ ही मैं जानवरों का इलाज भी करता हूँ।

मैंने अपने जीवन में खुद प्रयोग करके बहुत सीखा है। इसके लिए मैं दूर–दूर तक जंगलों में जाता हूँ, जड़ी–बूटियॉ खोजता हूँ और खुद दवाइयॉ तैयार करके प्रयोग करता हूँ। जड़ी–बूटियों के चमत्कारिक असर भी मैंने देखे हैं। जैसे हड़जोड़ी नामक पौधे से इंसान और जानवरों की हड्डियों को कुछ ही दिनों में मैंने जोड़ा है। हड्डियों के जोड़ों में होने वाली बुखार (जिसे आजकल चिकनगुनिया नाम देकर लोगों को डराया जा रहा है और अंग्रेजी दवाइयों का प्रचार किया जा रहा है) के लिए मैं गिलोय, कुटकी, चिरायता आदि का काढ़ा बनाकर देता हूँ, जिससे बिना किसी दुष्प्रभाव के रोग तो ठीक होता ही है, साथ ही पूरे साल में किसी प्रकार का बुखार नहीं आता।

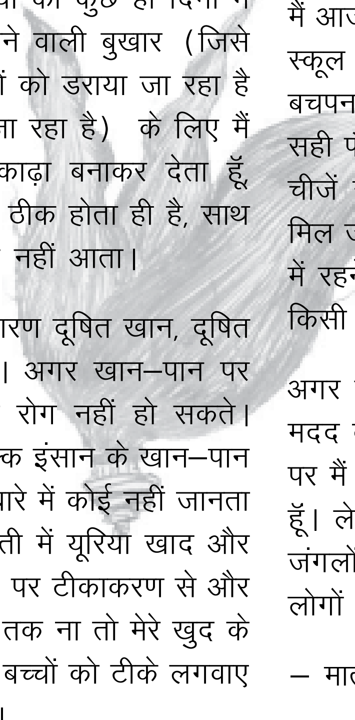

हमारे देशी इलाज में बीमारी की मूल कारण दूषित खान, दूषित जल और आजकल की जीवनशैली है। अगर खान–पान पर ध्यान दिया जाय, तो किसी प्रकार के रोग नहीं हो सकते। जड़ी–बूटियॉ भी कोई दवाई नहीं है, बल्कि इंसान के खान–पान का ही हिस्सा है। पहले टीकाकरण के बारे में कोई नहीं जानता था और न ही ये सब रोग होते थे। खेती में यूरिया खाद और दवाइयों के छिड़काव से तो रोग बढ़े ही, पर टीकाकरण से और भी ज्यादा रोग पैदा होने लगे हैं। आज तक ना तो मेरे खुद के कोई टीके लगे हैं और ना ही मैंने अपने बच्चों को टीके लगवाए हैं। अपने परिवार में हम सब स्वस्थ हैं।

रोग के बारे में डॉक्टरों और हमारी समझ में बहुत फर्क है। जैसे – एक बार एक महिला को पेट में तकलीफ हुई। कब्ज की वजह से उसका पेट फूल गया। उसी वजह से उसे खॉसी भी होने लगी। डॉक्टरों ने उसकी जॉच करके उसे टी.बी. की रोगी घोषित कर दिया। जब वो मेरे पास आईं, तो मैंने उसका कब्ज साफ करने के लिए अरण्ड का तेल दिया। कब्ज साफ होते ही थोड़ा खॉसी के लिए कुछ जड़ी–बूटी दी और वो तैयार हो गई। तो हमारी समझ है कि ज्यादातर बीमारियॉ भोजन ठीक से नहीं पचने के कारण होती है। अगर हमारा खानपान सहज पचने वाला नहीं है, तो कब्ज होगी और रोग होंगे। अगर आपको हर कुछ दिन बाद दस्त होते हैं, तो ठीक बात है। क्योंकि आपके शरीर की सफाई हो रही है। जिस तरह हम कपड़ों की नियमित सफाई करते हैं, वैसे ही शरीर के अन्दर की सफाई भी जरूरी है। मैं स्वयं आठ–दस दिन में एक बार जड़ी–बूटियों से जुलाब लेता हूँ। लेकिन आप दस्त लगने पर डॉक्टर के पास जाएँगे, तो वो तुरन्त दस्त बन्द करने के लिए आपको गोली खिलाएगा, जो बिल्कुल विपरीत बात है।

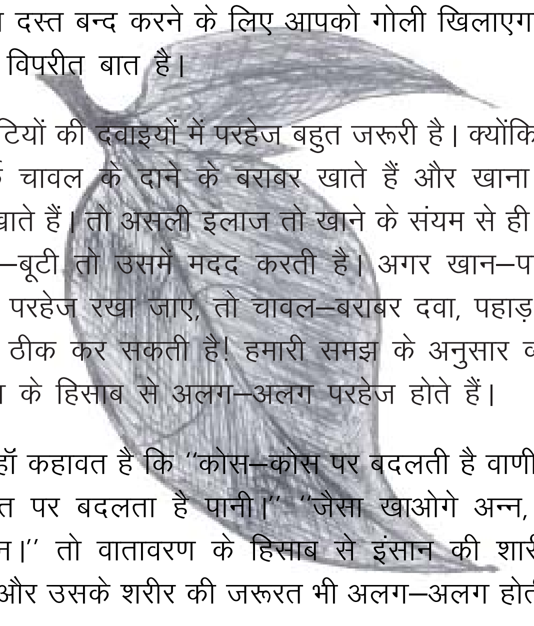

जड़ी–बूटियों की दवाइयों में परहेज बहुत जरूरी है। क्योंकि दवा तो सिर्फ चावल के दाने के बराबर खाते हैं और खाना आप भरपेट खाते हैं। तो असली इलाज तो खाने के संयम से ही होता है, जड़ी–बूटी तो उसमें मदद करती है। अगर खान–पान में उपयुक्त परहेज रखा जाए, तो चावल–बराबर दवा, पहाड़ जैसे रोग को ठीक कर सकती है। हमारी समझ के अनुसार व्यक्ति और रोग के हिसाब से अलग–अलग परहेज होते हैं।

हमारे यहॉ कहावत है कि ''कोस–कोस पर बदलती है वाणी और खेत–खेत पर बदलता है पानी।'' ''जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन।'' तो वातावरण के हिसाब से इंसान की शारीरिक बनावट और उसके शरीर की जरूरत भी अलग–अलग होती है।

मैं आज जब अपने पढ़े–लिखे दोस्तों को देखता हूँ और खुद के स्कूल छोड़ने के निर्णय पर विचार करता हूँ, तो लगता है कि मैंने बचपन से ही अपने जीवन को आनन्द देने वाला काम चुनकर सही फैसला किया है। अगर मुझे खाने–पीने के लिए भी पर्याप्त चीजें नहीं मिले और केवल जंगली माहौल और जड़ी–बूटियॉ मिल जाए, तो मैं बहुत आनन्दित और उत्साहित होता हूँ। प्रकृति में रहने और पेड़–पौधों के साथ काम करने के आनन्द को मैं किसी नौकरी या पैसे के लिए नहीं छोड़ सकता।

अगर कोई देशी इलाज सीखना चाहे, तो मैं उनको सीखने में मदद कर सकता हूँ। मैंने सीखने के लिए बहुत कष्ट उठाए हैं, पर मैं उन्हें कम समय में बिना तकलीफ दिए भी सिखा सकता हूँ। लेकिन मेरा मानना है कि असली में यह सीखने के लिए जंगलों में जाना, जड़ी–बूटियों को खोजना और अलग–अलग लोगों से उनके बारे में जानना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

— मातादीन राजपूत, ग्राम बसन्तपुर, पो. बलकोरा, तह. लौंड़ी,
ज़िला छतरपुर, मध्यप्रदेश फोन : 07687–227353

क्या वे आपके **क़ाबिल** हैं?

हमेशा टीचर बच्चों का मूल्यांकन करते हैं, पर बच्चों को कभी यह अवसर नहीं दिया जाता कि वे अपने शिक्षक का मूल्यांकन करे। गुरु–शिष्य परम्परा में गुरु और शिष्य के बीच परस्पर पूरकता का सम्बन्ध होता था। दोनों साथ मिलकर एक–दूसरे की जिज्ञासा और स्वयं सीखने की प्रक्रिया को मजबूत करते थे। शिष्यों को भी यह हक होता था कि वे अपने शिक्षक का चयन स्वयं करें। हमें लगता है कि अगर हम गुरु और शिष्य के बीच दोस्ती एवं वास्तविक सीखने–सिखाने का रिश्ता कायम करना चाहते हैं, तो बच्चों को भी अपने शिक्षक का मूल्यांकन करना चाहिए तथा उसके आधार पर अपने गुरु का चयन करना चाहिए। वैसे बच्चे शिक्षक की पीठ पीछे तो उनका मूल्यांकन करते हैं, लेकिन इसे कभी ईमानदारी से उनके सामने व्यक्त नहीं करते हैं। हमें लगता है कि गुरु–शिष्य के बीच ईमानदारीपूर्ण परस्परता का सम्बन्ध बहुत जरूरी है।

हमने कुछ बच्चों के साथ मिलकर कुछ प्रश्न तैयार किए हैं, जिनके आधार पर बच्चे अपने शिक्षक का मूल्यांकन कर सकते हैं। यह किसी शिक्षक का अपमान करने के लिए नहीं है, बल्कि आपसी रिश्ते और सीखने की प्रक्रिया को और मजबूत करने के लिए है। अगर आप इससे सहमत हैं, तो अपने शिक्षक का मूल्यांकन कीजिए।

1. उनके पास अपने विषय के बारे कितना व्यावहारिक ज्ञान एवं असली अनुभव हैं? जैसे – अगर वे विज्ञान पढ़ाते हैं, तो क्या उन्होंने अपने जीवन में कोई प्रयोग एवं शोध किए हैं?

2. कक्षा में कितनी सकारात्मक ऊर्जा (खुशी, जोश) के साथ आते हैं?

3. वे स्वयं नई चीजें सीखने के लिए कितनी जिज्ञासा रखते हैं?

4. वे आपकी बात कितनी सुनते हैं व आपकी कितनी इज्जत करते हैं?

5. अपनी गलतियों को कितना स्वीकारते हैं?

6. वे कक्षा के अलावा आपके साथ कितना समय कितना बिताते हैं?

अंक : 0 – कुछ नहीं, 1 – बहुत कम,
2 – कामचलाऊ 3. ठीक 4. बढ़िया

7. आपकी रुचि, क्षमताओं और सपनों के बारे में कितना जानते हैं?

8. वे आपके परिवार व समाज की कितनी कदर करते हैं?

9. वे आपके व्यक्तिगत काम में कितनी मदद करते हैं? जैसे कभी आप उन्हें अपने घर पर किसी काम में सहयोग के लिए बुलाएँ तो.

10. वे कितनी ऐसी चीजें सिखाते हैं, जो जीवन में काम आती हों?

11. वे अपने हर काम व जीवन में कितनी ईमानदारी से बरतते है?

कुल अंक : 44 प्राप्तांक :

इस प्रयोग पर आपकी प्रतिक्रिया एवं सुझाव आमंत्रित हैं।

– शिक्षान्तर आन्दोलन,

पढ़े-लिखे अन्धविश्वासी

- रामावतार सिंह

क्या ये जानते हैं कि
कहाँ से आता है इनका खाना?
कैसे बनती है दवा और क्यों होता है दवाखाना?
क्या है स्वास्थ्य और विकास की परिभाषा?
क्या होता है लोकज्ञान और अपनी भाषा?

क्या ये जानते हैं कि
इनके खाने में कितने केमिकल मौजूद हैं?
कैल्शियम के भ्रम में जो पीते दूध हैं!
सौन्दर्य के नाम पर क्या-क्या रगड़ते हैं?
थोथी सूचनाओं के बूते पर गर्व से अकड़ते हैं!

क्या ये जानते हैं कि
कौन पैदा करते हैं ये ढेर सारा कबाड़?
आखिर कहाँ जाता है यह कचरे का पहाड़?
पैसे को सभ्यता की निशानी बताते हैं!
लालच की दौड़ में पूरी ज़िन्दगी ख़पाते हैं!

क्या ये जानते हैं कि
क्या है अपने भीतर और क्या है अपने आसपास?
क्या है अपनी रुचि और क्या है अपने अन्दर खास?
डिब्बा-बन्द अंग्रेजी लेबल सहित
बाजार में जो कुछ भी है प्रचलित
उसी पर विश्वास करते हैं ये भ्रमित स्कूलित!

आमंत्रण

स्वपथगामियों द्वारा शुरू की गई यह पत्रिका विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के साथ संवाद स्थापित करने की कोशिश है, जिसके माध्यम से हम अनुभवों का आदान–प्रदान करते हैं। हम उन सभी लोगों को आमन्त्रित करते हैं, जो अपने जीवन में नए–नए प्रयोग कर रहे हैं और साथ मिलकर सीखने के मौके बना रहे हैं। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–

रामावतार सिंह <ramjiram1@gmail.com>
विधि जैन <vidhi@swaraj.org>
c/o शिक्षान्तर, 83 आदिनाथ नगर, उदयपुर – 04 (राज.)
फोन : 0294–2451303

विशेष आभार :– मुख्य पृष्ठ चित्र : रामावतार
अन्य चित्र : सनी गन्धर्व एवं रामावतार
सम्पादन सहयोग : शिल्पा जैन एवं विशाल सिंह